मार्क्सवाद की प्रासंगिकता

डॉ0 राकेश प्रताप शाही*

मार्क्सवाद एक महान वैज्ञानिक दर्शन, क्रान्तिकारी कार्यक्रम, प्रगतिशील आन्दोलन, करोड़ों लोगों की सामाजिक व्यवस्था का राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक आधार है। विगत सौ–सवा सौ वर्षों के अपने इतिहास में सैकड़ों चुनौतियों का सामना करने वाला, क्रान्तिकारी आन्दोलनों का प्रकाश स्तम्भ, करोड़ों–अरबों शोषित, निराश, पददलित लोगों को आशाएँ प्रदान करने वाला तथा विश्व मानव समाज एवं इतिहास आदि को समझने का वैज्ञानिक दृष्टिकोण है–मार्क्सवाद।

इस विचारधारा की विप्लवकारी शक्ति तथा इस पर आधारित आन्दोलनों ने दुनिया को दो प्रकार के समाजों में बाँट दिया– एक है पूंजीवादी दुनिया तो दूसरी समाजवादी दुनिया। सदियों से शोषण के जंजीरों में जकड़े शोषित वर्गों की फौलादी जंजीरे इस वैज्ञानिक दर्शन की आग में पिघलने लगी। विभिन्न ऐतिहासिक युगों में मौजूद शोषण की शताधिक विधियों का पर्दाफाश करने वाले इस दर्शन ने हमेशा के लिये शोषण और अत्याचार को खत्म करने का न केवल सिद्धान्त दिया, बल्कि इसे समाप्त करने के आन्दोलनों को मुक्ति का स्पष्ट रास्ता दिखाया। मानव मात्र की मुक्ति की युक्ति बताई है– मार्क्सवाद ने।

किन्तु साम्यवाद और मार्क्सवाद को जितना समर्थन मिला, उतनी ही खिलाफत शयद ही किसी अन्य विचारधारा का हुआ हो। जितना जुल्म मार्क्सवादियों पर हुआ, उतना शायद किसी अन्य पर हुआ हो तथा जितनी बेरहमी से मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित क्रान्तिकारी आन्दोलन कुचले गये, उतने शायद ही अन्य आन्दोलन कुचले गये हों। पेरिस कम्यून के क्रान्तिकारियों के खून से सारे फ्रान्स की धरती लाल हुई। चीन में कम्युनिस्ट जन योद्धाओं, इण्डोनेशिया, चिली आदि अनेक देशों के बहादुर क्रान्तिकारियों का कत्लेआम सिद्ध करता है कि यह विचारधारा वस्तुतः मानव की मुक्ति के लिए उपयुक्त है।

मार्क्सवाद के इन विरोधों के बावजूद यह एक वैज्ञानिक विचारधारा तथा तर्क संगत आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन के रूप में सबल होता गया। पिछले कुद दशकों में '06 विचार धाराओं के अन्त'' के नये सिद्धान्त के द्वारा मार्क्सवाद को भी मृत घोषित करने की कोशिश की गयी। इस सन्दर्भ में फ्रांसिस–फूकूयामा द्वारा 1989 में प्रकाशित एक सनसनी खेज प्रबन्ध ''इतिहास का अन्त'' पर थेड़ी चर्चा आवश्यक हो जाती है। सन् 1991 में फूकूयामा ने इस प्रबन्ध को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया, जिसका नाम था–

''इतिहास का अन्त और अन्तिम आदमी'' इस पुस्तक में फूकूयामा ने जो विचार रखा उसका केन्द्रीय सार यह है कि वर्तमान समाज में इतिहास आकर समाप्त हो जाता है। ऐसा वह इसलिए कहते हैं, कि इतिहास की यात्रा किसी चीज की खोज के लिए प्रारम्भ हुई थी, वह खोज थी– ''एक अच्छे समाज की '' जो इस समय तक आते–आते स्थापित हो चुकी है। यह अच्छा समाज उदारवादी लोकतान्त्रिक समाज है। ये उदारवादी समाज लगभग पूरे विश्व में स्थापित हो चुके हैं। इसलिए फूकूयामा ने कहा कि इतिहास की यात्रा जो प्लेटों के गुफा के उदाहरण से चली आ रही है, वह वर्तमान समय में समाप्त हो गयी है, क्योंकि इस यात्रा का लक्ष्य प्राप्त हो चुका है।

इसके अलावा हीगल जो यह कहता है कि राज्य में व्यक्ति का व्यक्तित्व समा जायेगा। आज के वैश्विक व उदारवादी लोकतान्त्रिक समाज में यह बात सही साबित हो रही है। अतः हीगल का दर्शन भी आज के समाज तक आते–आते समाप्त हो गया है। यहाँ फूकूयामा ऐसा इसलिए कहते हैं कि जब बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ हुआ था, तो उस समय इस उदारवादी लोकतान्त्रिक विचारधारा के दो मुख्य शत्रु थे– पहला फासीवाद तथा दूसरा मार्क्सवाद। बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक तक इस उदारवादी लोकतान्त्रिक विचारधारा ने अपने पहले शत्रु–फासीवाद पर विजय प्राप्त कर लिय था। किन्तु बीसवीं शताब्दी के अन्त तक इसने अपने दूसरे शत्रु मार्क्सवाद का भी लगभग सफाया कर दिया। इस तरह से

* समाजशास्त्र विभाग, श्री भगवान महावीर पी0 जी0 कालेज, पावानगर (फाजिलनगर) कुशीनगर, उ0प्र0

वर्तमान समय में केवल एक ही समाज बचा है जो कि उदारवादी लोकतान्त्रिक विचारधारा पर आधारित है और वही पूर्ण है। इसलिए फूकूयामा ने यह ऐलान किया कि– **'मार्क्सवाद मर गया है' (Marxism is dead)**

अतः यदि वास्तव में ऐसा है तो यह प्रश्न है कि आज मार्क्सवाद की क्या प्रासंगिकता है, जिसके कारण हम मार्क्सवाद का अध्ययन–अध्यापन करते हैं? किस प्रकार यह विचारधारा जनपक्षधर है? मार्क्सवाद पद्धति भी है तथा एक विचारधारा भी है। सबसे महत्वपूर्ण है– पद्धति। व्यक्ति को जिस निष्कर्ष पर पहुँचना होता है वह उसके ही अनुकूल अध्ययन पद्धति को अपनाता है। मार्क्स ने जो अध्ययन पद्धति अपनायी उसे हम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से जानते हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में दो महत्वपूर्ण शब्द हैं– भौतिकवाद और द्वन्द्वात्मक। पहला साध्य है और दूसरा साधन। अर्थात् द्वन्छात्मक पद्धति के द्वारा भौतिकवाद की स्थापना या प्रतिपादन ही मार्क्स का लक्ष्य है।

द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त मार्क्स ने हीगल से लिया था। हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति में त्रिक रूप महत्वपूर्ण है।

इस त्रिक रूप के निम्नलिखित चरण हैं :

(i) पक्ष Thesis	भाव Being
(ii) विपक्ष Antithesis	अभाव Non being
(iii) समन्वय Synthesis	संभवन Becoming

यह पद्धति जिन नियमों पर आधारित है, वह है :

(क) निषेध के निषेध का नियम।

(ख) इसके परिणामस्वरूप जो परिवर्तन होता है वह पहले मात्रात्मक, फिर गुणात्मक एवं फिर मात्रात्मक।

(ग) विरोधों (वाद व प्रतिवाद) में भी एकता होती है। क्योंकि ये एक ही वस्तु के अन्दर होते हैं।

मार्क्स इस पद्धति को उधार तो लेते हैं, किन्तु उसमें कुछ परिवर्तन करते हैं। हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति विचार पर आधारित है। हीगल इसे विचार पर इसलिए आधारित करते हैं, क्योंकि वे बुनियादी विचारक हैं। ज्ञातव्य है कि वुद्धिवादी एवं विचारवादी दार्शनिकों के लिए विचार प्राथमिक है। किन्तु मार्क्स के लिए पदार्थ ही प्राथमिक है। विचार हमारे मस्तिष्क में होते हैं, और मस्तिष्क शरीर में। शरीर का निर्माण पदार्थों से हुआ है। इसलिए मार्क्स कहते हैं कि मेरी द्वन्द्वात्मक पद्धति हीगल से न केवल भिन्न हैं, वरन् उसके बिल्कुल विरोधी भी। मैंने हीगल के द्वन्द्ववाद को सिर के बल खड़े पाया। मैंने उसे पैरों के बल खड़ा कर दिया।

एक आदर्शवादी और भौतिकवादी में मुख्य अन्तर निम्न प्रकार से समझा जा सकता है। जैसे– यदि कोई मेज है, तो आदर्शवादी इसके सम्बन्ध में यह कहेगा कि मेज का कोई अस्तित्व नहीं होता, जबतक कि हमारे दिमाग में ''मेज का विचार'' न हो। जबकि भौतिकवादी यह कहेगा कि यदि लकड़ी है तो मेज का कोई अस्तित्व नहीं होता। हमारे मन में दुनिया के किसी गाँव का अगर विचार न हो तो भी उस गाँव का अस्तित्व होगा, किन्तु यदि हम यह कहे कि हमारे दिमाग में किसी विचार मात्र के होने से कोई वस्तु अस्तित्व में रहती है, तर्क की दृष्टि से असत्य साबित हो जायेगा। जहाँ तक मार्क्स के भौतिकवादी होने का सम्बन्ध है, तो हमें ज्ञात है कि सामाजिक समझौते के प्रमुख सिद्धान्तकार ''हाब्स'' मार्क्स के पहले से भौतिकवादी हैं। किन्तु जिस प्रकार से मार्क्स की द्वन्द्वात्मक पद्धति हीगल से भिन्न है, उसी प्रकार मार्क्स का भौतिकवाद भी हाब्स के भौतिकवाद से भिन्न है।

हाब्स का भौतिकवाद यान्त्रिक भौतिकवाद कहलाता है। यह ''आइजैक न्यूटन'8 के भौतिकी सिद्धान्तों पर आधारित है। जिस प्रकार से न्यूटन का सिद्धान्त है कि प्रत्येक चीज या वस्तु गतिशील अवस्था में होती है। अतः सबकी अपनी–अपनी, अलग–अलग गति होती है, जिसके आधार पर सबका पृथक–पृथक अध्ययन किया जा सकता है। यही बात तो हाब्स का व्यक्तिवाद भी कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति एक स्वतंत्र इकाई है। चूकि न्यूटन के अनुसार प्रत्येक वस्तु एक सरल रेखा में गति करती है। अतः इस सिद्धानत पर आधारित हाब्स के भौतिकवाद की गति भी रेखीय है। किन्तु मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हीगल के द्वन्दात्मक पर आधारित है। अतः इसकी जो गति है, वह टेढ़ी–मेढ़ी है।

अब इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मार्क्स की प्रासंगिकता के बारे में विचार करने पर ज्ञात होता है कि मार्क्स द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में पदार्थ प्राथमिक है, विचार नहीं। अब यह बताना आवश्यक जान पड़ता है कि पदार्थ को मार्क्स ने क्यों प्राथमिक माना। सबसे पहले हम इस निर्विवाद तथ्य पर गौर करें कि वैज्ञानिक पद्धति ही सबसे ज्यादा विश्वसनीय है। प्रश्न उठता है कि पदार्थ प्राथमिक क्यों है? इस प्रश्न के उत्तर में मार्क्स ने कहा कि इस संसार की प्रत्येक वस्तु या तथ्य भौतिक है या जड़ तत्व है। अब प्रश्न उठता है कि क्या मानव भी जड़ है? तो क्या मानव निर्मित यह समाज भी जड़ की भाँति चेतना विहीन है? मानव की मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक क्रियाएं निश्चित रूप से अभौतिक या चेतन है। मार्क्स भी इन्हें अस्वीकार नहीं करते, लेकिन उनका कहना है कि ये सभी चेतन क्रियाएं अचेतन तत्व (जड़) के विकास का परिणाम है। वैज्ञानिकों ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि मानव शरीर का निर्माण जिन तत्वों से हुआ है, वे भौतिक या जड़ हैं। जैसे– मानव शरीर की रचना, कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, जिंक, तांबा, कैल्सियम, फास्फोरस, लोहा, क्रोमियम, सोडियम, पोटैशियम आदि अनेक तत्व एवं इन अनेक जड़ (भौतिक) तत्वों के अनेक जटिल यौगिकों के द्वारा होती है। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से यह कहना उचित होगा कि शरीर के निर्माण का कार्य करने वाले तत्व एवं उनके यौगिक निश्चित रूप से भौतिक या जड़ तत्व हैं। जहाँ तक शरीर में मौजूद चेतना की बात है, तो मार्क्स कहते हैं कि अचेतन से पृथक चेतन का अस्तित्व नहीं है। चेतन तो अचेतन की विकसित अवस्था है। विकास सदैव स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता है। अतः स्थूल रूप में वह अचेतन शरीर है तो सूक्ष्म रूप में चेतन मन। इस प्रकार अचेतन ही सूक्ष्म होकर चेतन कहलाने लगता है। इसी आधार पर मार्क्स कहते हैं कि मन शरीर की विकसित अवस्था है। अतः पदार्थ मस्तिष्क की ऊपज नहीं है, वरन् मस्तिष्क स्वयं पदार्थ की सर्वोत्कृष्ट ऊपज है। अतः मार्क्स का पदार्थ को प्राथमिक मानना वैज्ञानिकता के निकट है। जब तक विज्ञान प्रासंगिक रहेगा, मार्क्स भी जिन्दा रहेगा। मार्क्स अपना विचार इस प्रश्न से आरम्भ करते हैं कि वे ऐसे कौन से कारण थे, जिन्होंने मनुष्यों को मजबूर किया कि वे अपना स्वतन्त्र एवं पृथक जीवन छोड़कर सामूहिक रूप से जीवन यापन करें? इस प्रश्न के उत्तर में मार्क्स कहते हैं कि वह कारण है– लोगों की मूल भौतिक आवश्यकताएं। यदि मूल भौतिक आवश्यकता है तो इसके लिए जरूरी है कि उसकी पूर्ति हो। यह पूर्ति तभी होगी जब उत्पादन होगा। इस प्रकार लोगों की मूल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राज्य या समाज का प्रथम कार्य है– भौतिक उत्पादन करना।

भौतिक उत्पादन तभी होगा जब उत्पादन के साधन हों। किन्तु ये स्वयं कोई उत्पादन नहीं कर सकते, जब तक कि इनके साथ श्रम को मिश्रित न किया जाए। इस प्रकार उत्पादन के साधनों के साथ श्रम भी जरूरी है, तभी उत्पादन होगा। भौतिक वस्तुओं के उत्पादन के बाद समस्या उसके वितरण को लेकर उत्पन्न होती है। क्योंकि उत्पादन का कितना भाग किसकों मिलता है, यह निर्भर करता है कि उस व्यक्ति का उत्पादन की प्रक्रिया के साथ क्या सम्बन्ध है। जहाँ तक उत्पादन की प्रक्रिया के साथ सम्बन्धों की बात है, तो मार्क्स के अनुसार ये सम्बन्ध दो रूपों में होता है–

(क) वे लोग जो उत्पादन के साधनों के मालिक होते हैं।

(ख) वे लोग जो उत्पादन के साधनों के मालिक नहीं होते हैं।

ये वे लोग हैं जो अपने श्रम को उन उत्पादन के साधनों के साथ मिलाकर वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इसे एक चित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है–

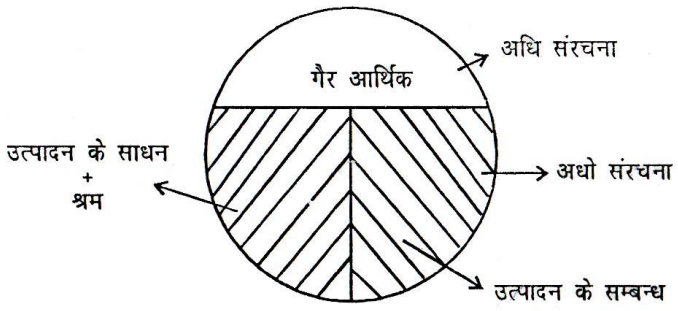

उपर्युक्त चित्र एक समाज का है। इस समाज के सदस्यों की मूल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सबसे जरूरी चीज है उत्पादन। किसी भौतिक वस्तु की उत्पादन के लिए उत्पादन के साधनों एवं श्रम का होना अति आवश्यक है। जब उत्पादन हो जाता है तो वितरण की समस्या आती है, जो इस बात पर निर्भर करती है कि इसका उत्पदन की प्रक्रिया के साथ कैसा सम्बन्ध है। यहाँ पर जो रेखांकित भाग है, वह समाज के आधार को दर्शा रहा है जिसे मार्क्स ने अधो संरचना कहा है, जो सम्पूर्ण समाज की अर्थ व्यवस्था हैं। कोई भी व्यवस्था चाहे वह सामन्तवादी हो या पूँजीवाद का निर्धारण, यही अधोसंरचना ही करती है। इस प्रकार जितनी भी आर्थिक चीजें होती हैं, इसी अधोसंरचना में ही होती है। जबकि जितनी भी गैर आर्थिक चीजें हैं, समाज के ऊपर ढॉचे में विद्यमान रहती हैं, जिसे मार्क्स ने अधिसंरचना कहा है। इस अधिसंरचना में कानूनी और राजनीतिक संरचना, धर्म, संस्कृति, भाषा, दर्शन, कला, साहित्य, नैतिक आदर्श एवं सामाजिक प्रथाएं तथा संस्थाऐ शामिल हैं।

मार्क्स का कहना है कि किसी भी समाज की जो अधोसंरचना होती है उसमें उत्पादन के साधन, श्रम शक्ति, सामाजिक विन्यास तथा परस्पर विरोधी वर्ग शामिल होते हैं और यही अधोसंरचना ही अधिसंरचना को निर्धारित करती है। इसका तात्पर्य है कि समाज की जो आर्थिक व्यवस्था होती है, वही समाज की अधिसंरचना की आधार शिला है। यही कारण है कि मार्क्स के सिद्धान्त पर आर्थिक नियतिवादी होने का आरोप लगता है। मार्क्स की यह आलोचना उनके समय में तो थी ही, उनकी मृत्यु के बाद भी बनी रही।

किन्तु आगे चलकर एंगेल्स ने मार्क्स के इस सिद्धान्त में थोड़ा सुधार करके यह कहा कि अधोसंरचना तो अधिसंरचना को निर्धारित करती ही है, साथ ही साथ अधिसंरचना भी पलट कर अधोसंरचना को निर्धारित करती है।

अब प्रश्न उठता है कि मार्क्स का यह विचार कहाँ तक सही है और कहाँ तक गलत। इसका निर्धारण कैसे किया जाय? इसके लिए यह देखना होगा कि क्या जब अधोसंरचना में परिवर्तन होता है, तब क्या अधिसंरचना में भी पविर्तन होता है अथवा नहीं। यदि हम सामन्तवादी और पूँजीवादी व्यवस्था को लें, तो हम देखते है कि सामन्तवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधन थे– भूमि, हल, बैल, खाद, बीज, आदि। जब इसके साथ किसान का श्रम मिलता है तो उत्पादन होता है।

इस व्यवस्था में उत्पादन का वितरण लगान और ऊपज के माध्यम से हेाता था। जबकि पूंजीवादी व्यवस्था में पहले पूंजीवादी राजनीति का आगमन हुआ होगा जिसका कारण संगठन होगा। यह उसी प्रकार हुआ होगा जैसा कि आज जो ''आइडिया आफ इण्डिया'' की संकल्पना है, यह संकल्पना पूंजीवादी व्यवस्था की देन है। भला एक कामन मार्केट की खोज भारत को संगठित किये बिना कैसे संभव है। राष्ट्र की संकल्पना भी इसी की देन है। किन्तु इसके पहले जब भारत में सामन्तवाद था तो उसमें किसी प्रकार की राष्ट्र की संकल्पना विद्यमान नहीं थी। देश छोटे'छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। सभी राज्य स्वायत्त थे। राज्यों की जनता केवल अपने शासकों को ही सब कुछ मानती थी। इस प्रकार उस समय के लोगों की दुनिया केवल राज्य तक ही सीमित थी।

इस प्रकार जब अंग्रेजों ने भारत को संगठित किया तो रेल मार्ग बने। नये शहर बसाये गये अथवा पुराने शहरों का विस्तारीकरण हुआ। लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कारखाने स्थापित किये गये ।इन कारखानों में मशीनें लगाई गयी तथा कच्चे माल की आवश्यकता भी पड़ी। पूंजीवादी व्यवस्था में ये सब उत्पादन के साधन थे। फिर इनके साथ श्रम को मिश्रित किया गया जो औद्योगिक मजदूरों के पास था। उत्पादन वितरण उत्पादन के सम्बन्धों पर निर्भर हो गया। इस व्यवस्था में हम देखते हैं कि उत्पादन तो मजदूर कर रहे हैं, किन्तु उत्पादन का मालिक पूंजीपति है।

यह तो अधोसंरचना में आया हुआ परिवर्तन हुआ। यदि ऊपर अधिसंरचना में चले तो शिक्षा प्रणाली के माध्यम से इसे समझ सकते हैं। सामन्तवादी व्यवस्था में जो शिक्षा प्रणाली थी, वह पद सोपानात्मक थी। इस व्यवस्था में अधिकार, स्वतन्त्रता एवं समानता की संकल्पना थी ही नहीं। ज्ञातव्य है कि पद सोपानात्मक का सिद्धान्त असमानता पर आधारित था। यह असमानता समाज में संरचित थी। पहले सामन्तवादी समाज में गुरू–शिष्य सम्बन्धों ने गुरू का स्थान ऊँचा तथा शिष्य का स्थान निचा होता था। यह विश्वास प्रबल था कि जिस प्रकार से द्रव हमेशा ऊपर से नीचे की ओर बहता है, उसी

प्रकार गुरू का ज्ञान भी हमेशा नीचे की ओर (शिष्यों की ओर) बहता था। इस सामाजिक व्यवस्था में पद सोपानत्मकता का स्थान प्रमुख था। वहीं दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था में गुरू–शिष्य के अधिकारों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

यदि हम सामाजिक मूल्यों के सम्बन्ध में देखें तो हमें पता चलता है कि सामन्तवादी व्यवस्था में व्यक्ति का स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं था। व्यक्ति अपने गाँव, जाति एवं धर्म इत्यादि से जाने जाते थे। प्रदत्त प्रस्थितियों को महत्व प्राप्त था। उस समय लोग बड़े–बड़े संयुक्त परिवारों में रहते थे। किन्तु इस पूंजीवादी समाज में नाभिकीय परिवार की अवधारणा चल पड़ी है, जिसमें सिर्फ पति–पत्नी एवं बच्चे हैं। अर्थात् अब बड़े–बड़े संयुक्त परिवारों का विघटन हो चुका है। इस व्यवस्था में हर व्यक्ति अकेला पड़ गया है। जहाँ सामन्तवादी व्यवस्था में ''प्राण जाये पर वचन न जाये'' तथा ''मेरा पति चाहे जैसा भी हो मेरा देवता है'' जैसी मूल्य व्यवस्था है। वहीं हम देख रहे हैं कि परिवार तथा समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन के लखण दिखाई दे रहे हैं। अब सामन्तवादी मूल्य व अवधारणाएं तेजी से बदल रही हैं। एक फिल्म में फिल्म नायिका माधुरी दीक्षित कहती हैं कि ''तुम मेरे पति हो, पति ही बने रहो, परमेश्वर बनने की कोशिश मत करना।'' सामन्तवादी व्यवस्था में हमने देखा कि जिन दलितों का शोषण होता था, पूंजीवादी व्यवस्था में उन्हें आगे आने और समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित होने का अवसर दिया जा रहा है। इस प्रकार हम देख रहे हैं कि चाहे मनुष्य की मूल प्रकृति हो अथवा सामाजिक व्यवस्था, जब अधोसंरचना में परिवर्तन होता है तो अधिसंचरना में भी परिवर्तन होगा।

यहाँ मार्क्सवाद की प्रासंगिकता इस बात में है कि वह आम आदमी की मुक्ति के लिए अपने सिद्धान्तों में यह बात खुल कर स्पष्टतया रखते हैं कि इस व्यवस्था से भी श्रेष्ठ व्यवस्था सम्भव है, जिसमें मानव के श्रम की महत्ता तथा मानवीय गरिमा को आघात नहीं पहुँचेगा। क्या हमें यह स्वीकार करने में संकोच है कि आज भी शोषण बहुविध रूप में जारी है। ज्ञातव्य है कि जब तक शोषण किसी न किसी रूप में होता रहेगा तब तक मार्क्सवाद भी जिन्दा रहेगा। कभी संकल्पों में तो कभी विचारों में, सत्ता की राजनीति में तो कभी सत्ता परिवर्तन (क्रान्ति) के लिए चलाये जाने वाले आन्दोलन के रूप में।

व्यवस्था परिवर्तन के लिए विश्व के अनेक देशों में मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर चलाये जा रहे आन्दोलनों द्वारा सामन्तवादी तथा साम्राज्यवादी हमलों की तीव्रता में गुणात्मक कमी लाने में सफलता प्राप्त की है। लैटिन अमेरिकी देशों में साम्यवादियों के बढ़ते प्रभाव को क्या नजर अंदाज किया जा सकता है।

साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की जनविरोधी नीतियों को लागू करने में जो होड़ लगी हुई है, उससे एक ओर किसान उजड़ रहे हैं, तो दूसरी ओर स्वचालितीकरण तथा मशीनीकरण के चलते बेरोजगारी भी बढ़ रही है। पिछले वर्षों में साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा सरकारी दमन चक्र के अनगिनत घिनौने रूप हमारे सामने आये हैं, पर यह भी सच है कि इसके खिलाफ दुनिया में प्रतिरोध भी लगातार जारी है।

बीते दशकों में प्रतिरोधी संघर्षों का सबसे बेहतरीन नमूना नेपाल में दिखाई दिया। जहाँ की जनता के प्रतिरोधी सैलाब ने राजशाही को उखाड़ कर इतिहास के कूड़ेदान में फेक दिया। आज जब इक्कीसवीं सदी में पृथ्वी सूर्य का छः चक्कर लगा चुकी है, नेपाल का समाज परिवर्तन की एक विशेष मंजिल पर खड़ा है। भगवान विष्णु के तथकथित प्रतिनिधि राजा ज्ञानेन्द्र कैसिनों में अपना समय जुआ खेल कर बिताने को मजबूर हैं। दस वर्षों तक चले जनयुद्ध में शामिल जनता अपना भविष्य बनते देख रही है, तो सिर्फ मार्क्सवाद की रोशनी में। विश्व के एक मात्र हिन्दू राष्ट्र नेपाल के राजा सर्वव्यापी अधिकार एक–एक कर इस क्रान्ति के भेट चढ़ते गये। 1989–90 के दौर में सोवियत संघ के विघटन के बाद साम्राज्यवादी मीडिया व उससे जुड़े बुद्धिजीवियों ने मार्क्सवाद तथा साम्यवाद के अन्त की घोषणा करते हुए यह ऐलान कर दिया था कि 21वीं सदी क्रान्तिविहिन सदी होगी, इतिहास का अन्त हो गया या मार्क्सवाद मर गया चुका है। जैसे नारों की प्रतिध्वनियाँ अभी हवा में गूंज ही रही थीं कि नेपाली समाज ने पिछली सदी की भाँति इस सदी का आगाज भी क्रान्ति से ही कर डाला। किस विचारधारा के बल पर? उत्तर बताने की आवश्यकता नहीं है। 2.5 करोड़ की आबादी वाले नेपाल की सक्रिय जनसंख्या 61 प्रतिशत है, जो 14–65 आयु वर्ग की है अर्थात 1 करोड़ 52 लाख। इस सक्रिय आबादी में से 60 लाख

से ज्यादा नेपाली जनता वर्ष 2006 के अप्रैल क्रान्ति में शरीक हुई थी। सच तो यह है कि पिछली सदी में हुए चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति के बाद यह पहली बार है कि व्यापक आबादी का इतना बड़ा हिस्सा एक स्पष्ट वैचारिक राजनीतिक उद्देश्य के साथ उठ खड़ा हुआ था।

नेपाली जनता की चेतना व सक्रियता में यह बदलाव मात्रात्मक से गुणात्मक की ओर हुआ। जिसने नेपाल के व्यापक ग्रामीण इलाकों में सामन्तवाद को समूल नष्ट कर डाला है। नेपाल का पहाड़ी हिस्सा 80 प्रतिशत है, जो विकास से कोसो दूर है। इन पहाड़ों पर रहने वाले तमाम उत्पीड़ित एथनिक समूहों जैसे राई, लिम्बू, मगर, शेरपा जैसी दर्जनों जातियाँ जो पिछले 250 वर्षों से राजशाही और खास राष्ट्रीयता के दमन के शिकार हैं– को मुक्ति का पथ दिखाने वाला मार्क्सवाद एवं उसके आधार पर विकसित उच्चतर दार्शनिक अवस्थाएं ही तो जिम्मेदार हैं।

इस वर्तमान अर्द्धउपनिवेशिक, अर्द्धपूंजीवादी समाज द्वारा संरचित पदसोपानात्मक व्यवस्था के अन्तिम पायदान पर खड़े आत्म हत्या कर रहे किसाानों, मजदूरों, शोषितों तथा पद्दलितों की उम्मीदों का लौ भी प्रासंगिक रहेगा। हाँ यह अवश्य है कि इसकी कई दार्शनिक रूप से सुस्पष्ट, उच्चतर तथा अधिक कारगर विचारधाराएँ परिस्थितियों से अनुकूलन करके अपने को संशोधित करती हुई वैश्विक स्तर पर नजर आ सकती हैं। किन्तु सबके मूलाधार में मार्क्सवाद ही रहेगा, हाँ सपना जरूर हो वर्गविहीन समाज की स्थापना का होगा। ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार समाज व्यवस्था में योगदान करके अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्ति कर सके।

सन्दर्भ :

1. The Capital- Karl Marx
2. The Poverty of Philosophy – Karlmarx
3. Communist – Menifesto – Karl Marx
4. राजनीति के सिद्धानत : उदारवादी एवं मार्क्सवादी– एम0पी0 जैन
5. Western Political Thin Kers – O.P. Gaba
6. पाश्चात्य दर्शन की समस्याएँ एवं समकालीन दर्शन – डॉ0 बद्रीनाथ सिंह
7. क्या करें – बा0ई0 लेनिन
8. काकोरी से नक्सलवाडत्री तक – शिव कुमार
9. रोल्पा से डेल्पा तक – आनन्दस्वरूप वर्मा
10. दैनिक हिन्दुस्तान
11. दस्तक, द्वैमासिक, अंक जनवरी–फरवरी 2007
12. आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, स0एल0 दोषी

●